जनसत्ता

खुदकुशी और सबक

जवाहर नवोदय विद्यालयों में छात्र-छात्राओं की आत्महत्या के मामले में अगर राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने सख्त रुख नहीं अपनाया होता तो शायद सरकार की आंखें नहीं खुलतीं। न ही देश को पता चलता कि ग्रामीण प्रतिभाओं को सामने लाने के मकसद से शुरू किए गए ये विद्यालय अब जितने शिक्षा के केंद्र हैं, शायद उतने ही छात्रों को जान देने पर मजबूर करने की जगह बन रहे हैं। चार साल यानी 2013 से 2017 के दौरान उनचास बच्चों की खुदकुशी हैरान करने वाली है। इस बात का खुलासा एक आरटीआइ से हुआ वरना किसी को भनक भी नहीं लगती कि नवोदय विद्यालयों में प्रतिभाएं जान दे रही हैं। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने हाल में मानव संसाधन विकास मंत्रालय को नोटिस जारी कर छह हफ्ते के भीतर इस मामले में जवाब मांगा है। ताज्जुब की बात तो यह है कि पिछले चार साल में जब-जब ऐसी घटनाएं हुईं, तब इन विद्यालयों को संचालित करने वाले शीर्ष निकाय ने इस दिशा में कोई कदम नहीं उठाया। इससे पता चलता है कि हमारा सरकारी तंत्र किस कदर गैर-जिम्मेदार है जिस पर इतने बच्चों की मौत के बाद भी कोई असर नहीं हुआ, न ही इस बात की गहराई से छानबीन करने की कोशिश की गई कि आखिर क्यों बच्चे ऐसा आत्मघाती कदम उठाने को मजबूर हो रहे हैं।

नवोदय विद्यालयों की स्थापना तीन दशक पहले बनी नई राष्ट्रीय शिक्षा के तहत की गई थी, ताकि ग्रामीण क्षेत्रों में रह रहे गरीब बच्चों को गुणवत्तापरक शिक्षा दी सके। इसमें कोई दो राय नहीं कि स्कूली शिक्षा में यह प्रयोग अपना लक्ष्य हासिल करने में काफी हद तक सफल भी रहा है। नवोदय विद्यालयों का परिणाम इनकी सफलता बताने के लिए पर्याप्त है। लेकिन पिछले कुछ सालों की घटनाएं बता रही हैं कि यहां सब कुछ ठीक नहीं चल रहा। इन विद्यालयों को भी उन दूसरे शिक्षण संस्थानों का वह रोग लग गया है जिसकी वजह से विद्यार्थी अपना भविष्य बनाने के बजाय जान देने को मजबूर हो रहे हैं। चौंकाने वाली तो यह है कि चार साल के दौरान जितने छात्रों ने जान दी उनमें से पच्चीस यानी आधे बच्चे अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के थे। लैंगिक आधार पर देखें तो पैंतीस छात्रों और चौदह छात्राओं ने जान दी। उनचास में से बयालीस बच्चों ने फांसी लगा कर खुदकुशी थी। जाहिर है, इन घटनाओं को बहुत ही हल्के में लिया गया।

देश भर में इस वक्त छह सौ पैंतीस जवाहर नवोदय विद्यालय हैं और इनमें करीब दो लाख अस्सी हजार बच्चे पढ़ रहे हैं। इन विद्यालयों की कमान नवोदय विद्यालय समिति के हाथ है जो मानव संसाधन विकास मंत्रालय के तहत एक स्वायत्तशासी निकाय है। ऐसे में क्या इस स्वायत्तशासी निकाय की जिम्मेदारी नहीं बनती थी कि जब बच्चों की खुदकुशी की घटनाएं सामने आनी शुरू हुईं तो गहराई से छानबीन की जाती और एहतियाती कदम उठाए जाते? इन घटनाओं के पीछे जो संभावित कारण बताए जा रहे हैं उनमें एकतरफा प्यार, पारिवारिक समस्याएं, शिक्षकों की प्रताड़ना, पढ़ाई का दबाव, छात्रों में आपसी झगड़े आदि मुख्य हैं। सवाल यह है कि नवोदय विद्यालय समिति और स्कूल प्रशासन ऐसी घटनाओं से आंखें क्यों मूंदे रहे। अगर हर मामले में गहराई से जांच की जाती तो समस्या की तह तक पहुंचा जा सकता था, ताकि भविष्य में ऐसी घटनाओं को रोकने में मदद मिलती। सरकार ने अब इन घटनाओं की जांच के लिए समिति बनाई है और हर स्कूल में काउंसलर नियुक्त करने की बात कही है। अगर इतनी सतर्कता पहले दिखाई जाती तो शायद कई प्रतिभाओं को बचाया जा सकता था!

हादसों के उद्योग

राजधानी दिल्ली के मोतीनगर इलाके में एक फैक्टरी में हुआ हादसा और उसमें सात लोगों की मौत से एक बार फिर यही साफ हुआ है कि नियम-कायदों को ताक पर रख कर कैसे औद्योगिक इकाइयों का संचालन हो रहा है और वहां लोगों की जान की कोई कीमत शायद नहीं है। वरना यह कैसे संभव हो पाता है कि इस तरह के तमाम हादसों के दौरान लोगों के मारे जाने के तथ्य को ध्यान में रखना और कम से कम उसके बाद बचाव के इंतजाम करना जरूरी नहीं समझा जाता है। गुरुवार रात मोतीनगर इलाके के सुदर्शन पार्क स्थित एक पंखे की फैक्टरी में कंप्रेशर फटने से हुए धमाके के बाद वह समूची दो मंजिला इमारत ढह गई। इसकी चपेट में एक कबाड़ का गोदाम भी आ गया। इस हादसे में छह लोगों की जान चली गई और एक दर्जन से ज्यादा लोगों के मलबे में दबे होने की आशंका है। यह समझना मुश्किल है कि एक ऐसी फैक्टरी रिहाइशी इलाके में कैसे चल रही थी, जिसमें हादसे की स्थिति में न केवल उसके भीतर काम करने वाले लोगों, बल्कि आसपास की इमारतों में रहने वालों पर खतरे की आशंका पहले से बनी हुई थी।

कहने को ऐसी घटनाओं को हादसा कह दिया जाता है, लेकिन सच यह है कि इस तरह की अमूमन सभी घटनाएं बहुस्तरीय लापरवाहियों का नतीजा होती हैं। ज्यादातर औद्योगिक इकाइयों में आग लगने या दूसरी वजहों से होने वाली दुर्घटना की स्थिति में बचाव के इंतजाम पर्याप्त नहीं होते। बल्कि कई जगहों पर हुए हादसों के बाद लोगों को इसलिए अपनी जान गंवानी पड़ गई कि वहां से निकलने के रास्ते या तो बेहद संकरे थे या फिर कोई रास्ता था ही नहीं। ऐसी हर फैक्टरी या फिर व्यावसायिक प्रतिष्ठान वाली इमारतों में अग्नि शमन विभाग की ओर समय-समय पर होने वाली जांच और उसके सुरक्षित होने से संबंधित प्रमाणपत्र की जरूरत होती है। लेकिन ऐसा लगता है कि न केवल ऐसे भवनों या फैक्टरियों या कंपनियों के मालिक इस तरह की नियमित जांच को एक जरूरी काम नहीं मानते हैं, बल्कि संबंधित महकमे भी या तो इस काम में टालमटोल करते हैं या मिलीभगत से वहां मौजूद खामियों की अनदेखी कर देते हैं। सवाल है कि अगर जानबूझ कर नियम-कायदों को ताक पर रख कर फैक्टरियों का संचालन होता है और उनकी अनदेखी प्रशासन के संबंधित महकमे और उनके अधिकारी भी करते हैं तो यह किस तरह आपराधिक लापरवाही से कम है!

किसी हादसे का सबक यह होना चाहिए कि उसके बाद किन्हीं परिस्थितियों में उसी तरह की दुर्घटना से बचाव के पर्याप्त इंतजाम किए जाएं। इसमें नियम-कायदों की कसौटी पर किसी भी तरह की लापरवाही बर्दाश्त नहीं किए जाने का सवाल शामिल है। लेकिन दिल्ली जैसे शहर में अक्सर ऐसी घटनाएं सामने आती रहती हैं, जिनसे यही लगता है कि हादसों और उनकी वजहों को लेकर न तो संबंधित संस्थानों या इकाइयों के मालिक या प्रबंधन को संवेदनशील होना जरूरी लगता है, न ही प्रशासन के संबंधित महकमों को वक्त पर सही तरीके से जांच और कार्रवाई सुनिश्चित करना अपनी ड्यूटी का हिस्सा लगता है। क्या यही कारण नहीं है कि फैक्टरी मालिकों को नियम-कायदों को ताक पर रख कर काम चलाते रहने की हिम्मत नहीं आती है? यह बेवजह नहीं है कि आए दिन बेहद मामूली से लेकर गंभीर लापरवाहियों की वजह से आग लगने या इमारतें ढहने की घटनाएं होती रहती हैं और उसमें नाहक लोगों की जान चली जाती है। जब तक इस तरह के तमाम कारखानों पर नजर रखने वाले संबंधित महकमों की जवाबदेही तय नहीं होगी, ऐसे हादसों से निजात पाना मुश्किल बना रहेगा।

कल्पमेधा

यदि लोग हमारे बारे में कुछ उलटी-सीधी बातें करते हैं तो हमें उनका उसी तरह बुरा नहीं मानना चाहिए, जिस तरह गिरजाघर की मीनारें अपने इर्द-गिर्द चीलों के चीखने का खयाल नहीं करतीं।

-इलियट

गगनयान और चुनौतियां

अभिषेक कुमार सिंह

पिछले कुछ सालों में इसरो ने तमाम कामयाबियों से अपनी क्षमता दुनिया के सामने रखी है। इससे पूरे अंतरिक्ष कारोबार के बाजार में खलबली मची हुई है। पिछले कुछ वर्षों के दौरान अमेरिका के निजी अंतरिक्ष उद्योग के कारोबारियों और अधिकारियों ने इसरो के कम लागत वाले प्रक्षेपण यानों से कड़ी प्रतिस्पर्धा मिलने की बात एक सार्वजनिक चिंता के रूप में सामने रखी थी।

अंतरिक्ष में मानव मिशनों का इतिहास देखें तो अब तक अंतरिक्ष में इंसान को भेजने का करिश्मा सिर्फ अमेरिका, रूस और चीन ने किया है। अमेरिका और रूस शीत युद्ध के समय से दुनिया पर अपना वर्चस्व साबित करने की कोशिश में थे, और इसी का नतीजा था अंतरिक्ष और चंद्रमा तक इंसान का पहुंचना। रूस इस मामले में अव्वल रहा कि उसने अपने अंतरिक्ष यात्री यूरी एलेकसेविच गागरिन को दुनिया का ऐसा पहला इंसान बना दिया जो अंतरिक्ष में पहुंचा था। अमेरिका इस मामले में कामयाब रहा कि उसके अंतरिक्ष यात्री चंद्रमा पर सबसे पहले अपने पांवों की छाप छोड़ने में सफल रहे। इन दोनों कामयाबियों को पांच दशक से ज्यादा अरसा बीत चुका है और इस बीच सिर्फ चीन है, जिसने करीब डेढ़ दशक पहले 15 अक्टूबर, 2003 को अपने नागरिक यांग लिवेई को यान शिंझोऊ-5 से अंतरिक्ष में भेजा था। सफलताओं की इस सूची में भारत का भी नाम अभी तक इस रूप में जुड़ता रहा है कि स्क्वाड्रन लीडर राकेश शर्मा 2 अप्रैल, 1984 को प्रथम भारतीय नागरिक के तौर पर अंतरिक्ष में कदम रख चुके हैं, लेकिन यह करिश्मा मित्र देश रूस की मदद से हुआ था जिसने अपने यान सोयूज-11 से उन्हें अंतरिक्ष में भेजा था। लेकिन अब भारत यह काम खुद के बूते करना चाहता है। भारत 2022 में अपने तीन यात्रियों को इसरो के बनाए 'गगनयान' से अंतरिक्ष में भेजेगा। इसके लिए सरकार ने दस हजार करोड़ रुपए की राशि मंजूर की है। इस अभियान का मकसद देश में विज्ञान और प्रौद्योगिकी को एक नए स्तर पर ले जाना है। इससे अंतरिक्ष में शोध के नए रास्ते खुलेंगे। लेकिन हजारों करोड़ के खर्च के अलावा कई और बातें हैं, जिन्हें लेकर इस महत्त्वाकांक्षी योजना पर सवाल उठते हैं। एक गरीब और विकासशील देश होने के नाते इस अभियान पर भी वही सवाल उठते हैं जो पहले चंद्रयान और मंगलयान मिशन को लेकर पैदा हुए थे। देश के किसान आत्महत्या करें और करोड़ों नौजवान बेरोजगार हों तो तीन लोगों को अंतरिक्ष में भेजने वाले अभियान पर दस हजार करोड़ रुपए का खर्च बेहद खलता है। पूछा जा सकता है कि क्या तीन लोगों को अंतरिक्ष में भेजना इतना जरूरी है कि लाखों लोगों की शिक्षा, चिकित्सा, आवास, बिजली-पानी-सड़क जैसी तमाम बुनियादी जरूरतों को दरकिनार किया जा सके।

बेशक, दस हजार करोड़ के खर्च के बावजूद भारत का गगनयान आज की तारीख में दुनिया में सबसे सस्ता है। मिसाल के तौर पर सबसे नजदीकी मामला चीन का है जिसने रूस की मदद से अपने नागरिक को अंतरिक्ष में भेजा था। तब चीन ने अपने मानव मिशन पर 18,350 करोड़ रुपए के बराबर रकम खर्च की थी। आज अमेरिका के एक अंतरिक्ष मिशन का खर्च तकरीबन तीस हजार करोड़ रुपए बैठता है। गौरतलब है कि चालीस साल पहले अमेरिका ने अपने अपोलो मिशन (चांद पर इंसान भेजने वाले अभियान) पर एक लाख चालीस हजार करोड़ रुपए खर्च किए थे। आज की तारीख में यह रकम करीब सात लाख करोड़ रुपए के बराबर बैठती है। इसके अलावा बीते सत्तावन वर्षों में अमेरिका ने अपने अंतरिक्ष मिशनों पर चौंतीस लाख करोड़ रुपए खर्च किए हैं। उधर रूस हालांकि अपने अंतरिक्ष मिशनों के खर्च को जगजाहिर नहीं करता है, फिर भी अनुमान है कि वह अपने एक अंतरिक्ष अभियान पर बाईस हजार करोड़ रुपए खर्च करता है। इस दृष्टि से देखें तो गगनयान पर खर्च होने वाली दस हजार करोड़ की रकम ज्यादा नहीं है, बल्कि अहम बात प्राथमिकताओं और इस मिशन से मिलने वाली ठोस उपलब्धियों की है।

भारत के इस मिशन पर अंतरिक्ष यात्रियों को कम से कम सात दिन के लिए अंतरिक्ष में रहना होगा। अंतरिक्ष यात्रियों का चयन भारतीय वायुसेना करेगी और उन्हें अंतरिक्ष उड़ान के प्रशिक्षण के लिए विदेशों में भेजा जाएगा। इस मिशन में इस्तेमाल होने वाले रॉकेट जियोसिन्क्रोनस सैटेलाइट लांच वेहिकल मार्क-3 (जीएसएलवी-एमके-3) से कम से कम दो मानवरहित उड़ानें होंगी। सबसे अहम बात है कि यह अभियान स्वदेशी होगा। इसरो इसकी कुछ तकनीक विकसित कर चुका है। जैसे इसरो ने पहले ही क्रू-मॉड्यूल और बचाव प्रणाली (स्केप सिस्टम) का परीक्षण कर लिया है। बाकी तैयारियां अगले कुछ

चरणों में पूरी हो जाएंगी। इसरो ने मंगलयान के अलावा अपने रॉकेटों में भारी विदेशी उपग्रहों को अंतरिक्ष में स्थापित करके जो प्रतिष्ठा हासिल की है, उसे देखते हुए गगनयान से किसी भारतीय को अंतरिक्ष में भेजने का उसका सपना नामुमकिन नहीं लगता है। दस साल तक इसरो के प्रमुख रहे यूआर राव ने एक अवसर पर कहा था कि भारत को अंतरिक्ष में मानव मिशन की एक सख्त जरूरत चीन की चुनौतियों के मद्देनजर है। यानी भारत ने जल्द ही ऐसा नहीं किया तो वह अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी की दौड़ में पड़ोसी चीन से ही मात खा बैठेगा।

असल में, मामला अंतरिक्ष की खोज और उसके (संसाधनों के) दोहन का है। अमेरिका और रूस के बाद चीन इस दिशा में तेजी से आगे बढ़ रहा है। वह मानव मिशन को अंतरिक्ष में भेज चुका है और जल्द ही चंद्रमा पर ऐसा मिशन भेजने की उसकी योजना है। अंतरिक्ष के क्षेत्र में दबदबे के लिए जरूरी है कि कोई देश चांद या अंतरिक्ष के मानव मिशनों से अपनी योग्यता व क्षमता लगातार साबित करता रहे। पिछले कुछ सालों में इसरो ने तमाम कामयाबियों से अपनी क्षमता दुनिया के सामने रखी है। इससे पूरे अंतरिक्ष कारोबार के बाजार में खलबली मची हुई है। पिछले कुछ वर्षों के दौरान अमेरिका के निजी अंतरिक्ष उद्योग के कारोबारियों और अधिकारियों ने इसरो के कम लागत वाले प्रक्षेपण यानों से कड़ी प्रतिस्पर्धा मिलने की बात एक सार्वजनिक चिंता के रूप में सामने रखी थी।

यह एक सच्चाई है कि आज की दुनिया दूरसंचार से लेकर मौसम की जानकारी तक के लिए काफी हद तक अंतरिक्ष में तैनात उपग्रहों पर आश्रित है। यही वजह है कि अब सूचना तकनीक (आइटी) और बीपीओ उद्योग के बाद अंतरिक्ष परिवहन दुनिया में ऐसे तीसरे क्षेत्र के रूप में उभरा है, जिसमें भारत को पश्चिमी देशों की आउटसोर्सिंग से अच्छी-खासी कमाई हो रही है। माना जाता है कि इसरो से उपग्रहों का प्रक्षेपण करवाने की लागत अन्य देशों के मुकाबले तीस से पैंतीस फीसद कम है। हालांकि इसरो इस कीमत का खुलासा नहीं करता, पर वह एक उपग्रह को कक्षा में स्थापित करने के लिए अमूमन 25-30 हजार डॉलर प्रति किलोग्राम के हिसाब से शुल्क लेता है। भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम के लिए विदेशी उपग्रहों को अपने राकेटों से अंतरिक्ष में भेजने का उपक्रम असल में पैसा जुटने का एक जरिया है। आज स्थिति यह है कि कई यूरोपीय देश भारतीय रॉकेट से अपने उपग्रह अंतरिक्ष में भेजना इसलिए पसंद करते हैं कि यह उन्हें सस्ता पड़ता है। इसके अलावा भारतीय राकेटों की सफलता दर भी काफी ऊंची है। इसरो की कोशिश है कि निजी क्षेत्र की मदद से वह उपग्रहों और राकेटों के निर्माण में तेजी लाए और उन राकेटों के जरिए विभिन्न देशों के उपग्रह बेहद प्रतिस्पर्धी कीमतों पर अंतरिक्ष में छोड़े। इसरो की इस कामयाबी से अमेरिका की निजी कंपनियों की नींद उड़ी हुई है। उम्मीद है कि अंतरिक्ष अनुसंधान और कारोबार में भारत नई पताकाएं फहराएगा और देश की युवा शक्ति को गहन शोध कार्यों की तरफ मोड़ कर उनके रोजगार की इतनी फिक्र की जाएगी कि उन्हें शोध के लिए विदेशों का मोहताज न होना पड़े।

संकल्प से सामना

अंशुमाली रस्तोगी

दुनिया मेरे आगे

अक्सर देखा-सुना है कि नया साल आते ही बहुत लोग तरह-तरह के 'संकल्प' लेते हैं। खुद से कोई खास काम करने और कुछ काम नहीं करने का वादा करते हैं। कुछ तो अपने संकल्प और वादे को बाकायदा 'ट्विटर' या 'फेसबुक' पर लिख कर सबके साथ साझा भी करते हैं। इन तमाम तरह के संकल्पों और वादों में आधे से अधिक शराब या सिगरेट छोड़ने पर केंद्रित होते हैं। अब तो लोग धीरे-धीरे सोशल मीडिया छोड़ने या उससे दूर रहने का संकल्प भी लेने लगे हैं।

लेकिन अच्छा है। भले किसी बहाने से ही सही, अगर बुरी आदतें छूट जाती हैं तो इसमें कोई हर्ज नहीं है। शराब और सिगरेट ने कितने ही परिवारों की जिंदगी तबाह कर डाली, सब हमारे सामने है। दूसरी तरफ, सोशल मीडिया के प्रति हद दर्जे की दीवानगी भी हमें न केवल खुद से, बल्कि अपनों से भी दूर लिए चली जा रही है। दिन का खाली वक्त आपस में बातचीत करने में नहीं, स्मार्टफोन या मोबाइल की टच-स्क्रीन पर अंगुलियां चलाने में ही खाक हो जाता है। खाना-पीना, उठना-जागना, रोना-हंसना, मिलना-जुलना या गुस्सा-प्यार- सब कुछ अब सोशल मीडिया पर ही है।

इस सबसे इतर जो बात मैं जानना चाह रहा हूं, वह यह है कि नए साल पर लिए जाने वाले तमाम संकल्पों में क्या हममें से किसी ने कोई संकल्प बेहतर इंसान बनने का भी लिया होगा! क्या कोई संकल्प ऐसा भी होगा, जिसमें समाज में तेजी से बढ़ रहे हिंसा और घृणा के माहौल को बनने से रोकने का इरादा हो? हम आपस में इंसानों की तरह ही रहें, न कि हिंसक हो चुके जानवरों की तरह। यह ध्यान रखने की जरूरत है कि अगर हम एक बेहतर इंसान बन कर इंसानियत को देश और समाज में कायम नहीं रख पाते हैं तो हमारे द्वारा लिए गए सारे अभिजात किस्म के संकल्प सिर्फ ढकोसला साबित होंगे। यह मान लिया जाए कि कोई व्यक्ति नए साल से सिगरेट, शराब और सोशल मीडिया को अपने संकल्प के मुताबिक छोड़ देता है। लेकिन क्या एक बेहतर इंसान बन कर दिखा पाना भी उसके लिए इतना ही आसान है?

विडंबना यह है कि आज समाज के पास सब कुछ है। लेकिन अगर कुछ नहीं है तो बेहतर इंसान। न जाने सामाजिक माहौल को यह क्या होता जा रहा है कि लोग तुरंत बिना कुछ सोचे-समझे, अपने से असहमति रखने वाले को या तो मरने-मारने को तैयार हो जाते हैं या फिर उसे गालियां देने या 'देशद्रोही' साबित करने को लेकर आक्रामक हो जाते हैं।

जो समाज असहमतियों और आलोचनाओं को बर्दाश्त नहीं कर पाता, उसका पतन निश्चित है। आखिर लोग शब्द का जवाब शब्द से और भाषा का भाषा से क्यों नहीं देना जानते? क्यों हिंसा को ही हर मसले का एकमात्र समाधान बनाए रखना चाहते हैं? यह सोच बेहद खतरनाक है। हमारे भीतर यह जो 'केवल हम ही सही हैं, बाकी सब गलत' का अहंकार बैठ गया है, यह बहुत गड़बड़ पैदा कर रहा है। यही अहंकार गुस्से और हिंसा की शक्ल ले रहा है। न हर बात को सही माना जा सकता है, न गलत। कुछ तो आलोचना और असहमति की गुंजाइश अपने बीच रखनी ही होगी हमें।

यह कितना अजीब है कि हम बेहतर इंसान भी बनना चाहते हैं और अपने अहंकार को भी त्यागना नहीं चाहते। दो नावों पर पैर रख कर क्या नदी को पार किया जा सकता है? बस कोई बड़ा कलाकार यह कह भर दे कि उसे देश में रहने से डर लगता है, फिर देखिए कि हम उसकी किस हद तक लानत-मलामत नहीं करते? विरोध में यहां तक अंधे हो जाते हैं कि 'देशद्रोही' और 'गद्दार' तक कहने-बोलने से नहीं चूकते। कोई बात सही है या नहीं, वक्त उसे साबित कर देता है। जब देश का लोकतंत्र सबको बोलने की आजादी देता है तो भला मैं या हम कौन होते हैं उसे बोलने से रोकने वाले? हां, अपनी बात कह कर हम अपना विरोध दर्ज करवा सकते हैं लेकिन व्यक्तिगत छीछालेदर गलत है।

इन्हीं असहमतियों और विपरीत विचारधारा रखने वालों को सुन कर पता चलता है कि हम बेहतर इंसान अभी बन भी पाए हैं कि नहीं। अपने कानों में इतनी क्षमता पैदा कीजिए कि वे कड़वा भी सुन सकें और मीठा भी।

लेकिन क्यों न कई तरह के संकल्पों के बीच हम एक बड़ा संकल्प बेहतर इंसान बनने का भी लें! यह उतना कठिन नहीं होगा, जितना हम सब समझते हैं। एक दफा करके तो देखिए, हो सकता, आपके नक्शे-कदम पर कुछ और लोग भी साथ आ जाएं। ऐसा अगर होता है तो यही नहीं, आने वाले सालों में भी हम एक बेतहर इंसान के रूप में जाने और पहचाने जाएंगे।

सुधार का इंतजार

आर्थिक मोर्चे पर मौजूदा केंद्र सरकार का प्रदर्शन बुरा नहीं है, लेकिन आम लोगों और कॉरपोरेट जगत को सरकार से और अधिक सक्रियता की उम्मीद है। हालांकि इस बात को लेकर थोड़ी बेचैनी बढ़ रही है कि कोई बदलाव क्यों नहीं हो रहा है और जो बदलाव हो रहे हैं उनका असर जमीनी स्तर पर पहुंचने में इतना वक्त क्यों लग रहा है?

लोगों को उम्मीद थी कि विनिर्माण में तेजी आएगी, नौकरियों में इजाफा होगा और आर्थिक गतिविधियों में अचानक बढ़ोतरी हो जाएगी तो उनकी ये अपेक्षाएं कुछ ज्यादा ही ऊंची थीं। भारतीय विनिर्माण क्षेत्र की समस्याएं गहरी हैं और ये साढ़े चार साल में दुरुस्त नहीं की जा सकीं तो कब की जा सकेंगी? चीजें थोड़ी धीमी जरूर हैं लेकिन ऐसा भारत में जड़ता की वजह से है जहां किसी भी बदलाव को शुरू में प्रतिरोध का सामना करना पड़ता है। 2018-2019 के बजट में खेती और किसानों को प्राथमिकता दी गई थी पर विश्व की सबसे अधिक युवा शक्ति के रूप में उभरा भारत बेरोजगारी, जनसंख्या वृद्धि और प्रदूषण जैसी विकट समस्याओं का सामना कर रहा है जिन पर काबू पाने में सरकारी और निजी संस्थाएं विफल हो रही हैं।

विभिन्न कारोबारी क्षेत्रों में बिक्री और मांग में वृद्धि के सुअवसर पैदा करने होंगे जो बेहतर क्षमता-इस्तेमाल और निवेश बढ़ने की उम्मीद जगाने में मदद करते हैं। गैर टिकाऊ उपभोक्ता सामान, दोपहिया और ट्रैक्टर क्षेत्र में ग्रामीण मांग में सुधार में इजाफा जरूरी है। सरकार के कई अभियानों मेक इन इंडिया, डिजिटल इंडिया, स्वच्छ भारत, स्वच्छ ऊर्जा, स्टार्टअप इंडिया में तेजी लानी होगी। कारोबारी सुगमता में 23 पायदानों की जो सफलता मिली है वह सराहनीय पर यह काफी नहीं है। आर्थिक वृद्धि दर 7.3 फीसद को 8.0 फीसद से ऊपर ले जाने के प्रयास करने होंगे।

मौजूदा दौर में बैंकिंग क्षेत्र से जुड़े दो-तीन मुद्दे हैं, जिन्हें अलग-अलग तरीके से देखा जाना चाहिए। पहला यह कि अगर गैर-निष्पादित संपत्तियों (एनपीए) का स्तर देखें तो बीते दिनों सकल एनपीए 17 फीसद के पास पहुंच चुका था। यह स्थिति लगातार बिगड़ती ही जा रही है। कुछ दिन पहले आई रिपोर्ट में एनपीए सितंबर 2018 में घट कर 10.8 फीसद पर आ गया जो मार्च 2018 में 11.5 फीसद पर था हालांकि यह नाकाफी सुधार है। इसके अतिरिक्त खनन, खाद्य प्रसंस्करण और विनिर्माण क्षेत्रों में दबाव बढ़ रहा है जिसमें सुधार की उम्मीदें हैं। जब हम एनपीए के आंकड़ों को देखते हैं तो बैंकिंग क्षेत्र की स्थितियां बद से बदतर होती नजर आती हैं।

नए कारोबारी साल में बड़ी-बड़ी घोषणाओं की बजाय कुछ खामियों को ठीक करने की जरूरत है। कोल और गैस क्षेत्रों को नजरअंदाज किया गया है जिन पर ध्याना दिया जाना चाहिए। इससे अर्थव्यवस्था में तेजी आएगी। नवागंतुक कारोबारियों को जीएसटी की जटिलता ने उलझा कर रख दिया है। ऐसे तमाम कारोबारी मुद्दे हैं जिनमें सुधार की उम्मीद का कारोबार जगत नए वर्ष में इंतजार कर रहा है।

● *विवेकानंद मिश्र, जोगिया, सांडा, देवरिया*

इंटरनेट की लत

शशांक द्विवेदी का लेख 'डिजिटल लत और बढ़ता संकट' (2 जनवरी) पढ़ा। आज सचमुच बच्चे और युवा इंटरनेट की गिरफ्त में आ चुके हैं। सुबह से देर रात तक इंटरनेट का प्रयोग करना अब आम बात है। कुछ युवा अपने साथ 'पावर बैंक' लेकर चलते हैं, जैसे ही फोन की बैटरी कम हुई मानो उनकी भी बैटरी भी कम हो गई! स्मार्टफोन की लत एक बीमारी बनती जा रही है। एम्स में तो इसका एक अलग से विभाग बना दिया गया है जिसमें मरीज भी आने शुरू हो चुके हैं। जिस प्रकार आज पूरा विश्व प्रदूषण से लड़ाई लड़ रहा है ठीक वैसी ही लड़ाई इंटरनेट की लत से भी लड़नी पड़ रही है।

इन दिनों युवा हों या बच्चे, अपने पास बैठे व्यक्ति से बात तक नहीं करते बल्कि इंटरनेट के जरिए दूर बैठे किसी शख्स से बात कर रहे होते हैं हालांकि उन्हें पता भी नहीं होता कि जिससे वे बात कर रहे हैं वह है भी या नहीं। वे वास्तविकता को छोड़ आभासी दुनिया में खो से गए हैं। हम सबको इसके खिलाफ मिल कर आवाज उठानी होगी। अभिभावकों की इसमें महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारी बनती है।

● *आशीष, रामलाल आनंद कॉलेज, दिल्ली*

कानून के बावजूद

बच्चों को यौन अपराधों के बचाने के लिए बनाए गए पोक्सो एक्ट 2012 को और कड़ा करते हुए अब इसमें बाल पोर्नोग्राफी को भी सजा के दायरे में लाया गया है। सबसे बड़ी बात, कुछ विशेष मामलों में अपराधी को मृत्यु दंड देने का भी प्रावधान कर दिया गया है। कानून बनाने का मकसद होता है अपराधियों में भय पैदा करना। लेकिन भारत ही नहीं, दुनिया भर में जब भी कोई अपराध को अंजाम देता है वह किसी कानून, उसकी धारा या उपधारा के बारे में नहीं सोचता। निर्भया के समय पूरा देश एक स्वर में दोषियों को मृत्यु दंड की मांग के लिए प्रदर्शन करने लगा था मगर नतीजा क्या निकला! उस कांड के किसी भी अपराधी आज तक फांसी पर नहीं लटकाया जा सका है। अनेक राज्यों ने बच्चों के साथ यौन अपराध करने वालों के लिए फांसी की सजा मुकर्रर की है मगर हमारे देश में कार्यान्वयन का सख्त अभाव है। ठीक है, मंदसौर का उदाहरण दिया जा सकता है जहां महज नब्बे दिनों के अंदर दो अभियुक्तों को मौत का सजा सुनाई जा चुकी है। मगर आज भी 80 प्रतिशत मामलों में अभियुक्त बरी हो जाते हैं। जब तक देश में अदालतों की संख्या में बढ़ोतरी नहीं होगी, पुलिस विभाग में सुधार नहीं किया जाएगा तब तक कानून चाहे कितना भी सख्त क्यों न कर लें, पीड़ितों को इंसाफ नहीं मिल पाएगा।

● *जंग बहादुर सिंह, गोलपहाड़ी, जमशेदपुर*

चौपाल

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com

इनका अवकाश

मध्यप्रदेश सरकार का पुलिसकर्मियों को साप्ताहिक अवकाश देने का फैसला स्वागतयोग्य है। पुलिसकर्मी भी सामाजिक प्राणी हैं और उन्हें भी आराम की जरूरत होती है। लगातार ड्यूटी करने से उनका तनावग्रस्त होना स्वाभाविक है। कई पुलिसकर्मियों ने तनाव के चलते आत्महत्या जैसे अनुचित कदम भी उठाए हैं। अब साप्ताहिक अवकाश दिए जाने से वे अपने परिवार को न केवल समय देंगे बल्कि एक दिन आराम करने से तनाव मुक्त भी रहेंगे।

● *हेमा हरि उपाध्याय, खाचरोद, उज्जैन*